Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

बृहस्पतिस्मृति में अर्थव्यवस्था

Dr Hetal M Pandya

Department of Sanskrit Gujarat University Ahmedabad

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

सुदृढ़ एवं समृद्धिशाली राज्य के लिये आर्थिक दृढ़ता अत्यन्त महत्वपूर्ण होती थी । अतः बृहस्पति तथा अन्य धर्मोर्थशास्त्रियों ने समान रूप से राज्य-प्रकृतियों में कोश को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। राज्य की समृद्धि के लिये ही नहीं वरन् इस संसार के अर्थ प्रधान होने के कारण भी बृहस्पति के मतानुयायी उसकी उपादेयता स्वीकार करते है। बार्हस्पत्य राज्य चिन्तन में कोश शब्द का व्यवहार केवल राजकीयकोश के संदर्भ में नहीं हुआ है। बृहस्पति ने कोश शब्द का प्रयोग कहीं व्यापक अर्थ में किया है। वास्तव में कोश शब्द से उनका अभिप्राय राज्य की अर्थनीति से है न कि सामान्य राजकोश से ।

बृहस्पति तथा अन्य अर्थशास्त्रियों ने कोश को विशेष महत्त्व प्रदान किया है। बृहस्पति धन को ही समस्त क्रियाओं का मूल तथा उद्गम स्थान मानते है। कौटिल्य भी धन को प्रधान महत्त्व प्रदान करते है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र परम्परा बृहस्पति से शिष्य परम्परा में प्राप्त की थी।

वित्त विभागीय अनुशासन तथा परिहापण सम्बन्धी नियम : बृहस्पति राजकीय वित्त व्यवस्था के प्रति विशेष रूप से जागरूक है। वे उच्च स्तरीय

प्रशासकीय अनुशासन के पक्षपाती है। अतः उनका स्पष्ट कथन है कि जिसका मंत्री ही धनलोलुप हो जाता है। उस राजा के पास धन कहाँ ?" व्यवहार और अर्थ के ज्ञाता से क्या लाभ जो राजा के धनोपाय अर्थात् अर्थ लाभ के मार्ग और शत्रु के क्षय की चिन्ता नहीं करता। उन्हें भली भाँति ज्ञात है कि शुल्क स्थानों में ही विशेषरूप से कुप्रबंध होता है। उनका कथन है कि शुल्क स्थानों पर अल्प अन्याय भी विनाशकारी होती है। बृहस्पति को भली भांति ज्ञात है कि यह विभाग राष्ट्रीय लाभ नहीं, अनुशासन की कमी में व्यक्तिगत लाभ का भी हो सकता है। उन्होंने वित्तविभागीय नियमों की कठोरता के निर्देश और विभागीय अनुशासन को रूपरेखा का निर्माण व्यक्तिगत लाभ उठानेवाले अर्थात् परिहापण अथवा गवन करनेवाले अधिकारियों को रोक-थाम के लिये किया था । " सामान्य रूप से गबन को वर्तमान शासकों की कमजोरी माना जाता है। किन्तु यह अद्भुत सत्य है कि बृहस्पति (तथा कौटिल्य) ने इस प्रकार के परिहापणों को रोकने के लिये विशेष

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

नियमों का निर्देश करना पडा था ।"समस्त राज्य व्यवस्था के संचालन के लिये बृहस्पति तीन गुणों (मंत्र, गुण, अर्थ गुण तथा सहाय गुण) का सम्मिलन आवश्यक मानते हैं और इनसे युक्त राजा को वे गुणवान् की संज्ञा प्रदान करते है। उनका स्पष्ट मत है कि जनता में जिस राजा की गुणवान् के रूप में प्रसिद्ध है, उसे अन्य लोग निर्गुण कैसे कह सकते है ?" बृहस्पति के कथन से स्पष्ट है कि अर्थगुण या आर्थिक नीति का विनिश्यय विशेष महत्त्वपूर्ण होता था और यही गुण उसमें विशेष रूप से गुणों की स्थापना करना था । यदि उसमें अर्थ नीतिनिर्धारण की क्षमता होती थी तो गुणहीन कहाने का प्रश्न ही नहीं उठता था। कर निर्धारण के सिद्धान्त स्पष्ट करते हुए बृहस्पति का स्पष्ट मत है कि देश की परम्परा के अनुरूप प्रजापालन (प्रशासन) होना चाहिये अन्यथा प्रजा में क्षोभ व्याप्त हो जाता है। प्रजा शत्रुपक्ष की और आकर्षित हो जाती है और बल तथा कोश नष्ट हो जाते है। करनीति के निर्धारण में बृहस्पति ऐसे कही सिद्वान्ती का पालन अनिवार्य मानते हैं ।

बृहस्पति कर निर्धारण का प्रथम और अन्तिम उद्देश्य लोकहित मानते हैं, जिसके लिये र जिसके द्वारा प्रेरित समस्त व्यवस्था होती थी। राजकीय आय का सबसे बड़ा साधन राजस्व था। अतः उसके निर्धारण और वसूली के लिये उनका मत है कि देश भूमि और प्रजा तीनों को ह स्थिति का विचार किया जाय। उसकी वसूली भी अवस्था के अनुरूप, मासिक या वार्षिक हो । करनियमित के बारे में भी बृहस्पति का मत है कि कर धर्मानुकूल हों। उनके विनिश्चय एवं वसू का भी मापदण्ड हों। उनका कथन है कि जो राजा धन प्राप्ति की इच्छा से हीनाधिक कर ले है उसका राज्य बुद्धिमान न होकर पतनोन्मुख हो जाता है ।१४ कर वसूली में भी वे नियमित आवश्यक मानते हैं । उनका स्पष्ट मत है कि शुल्क स्थानों अथवा चुंगी धरों पर होने वाले अन्य का प्रभाव राष्ट्र की प्रतिष्ठा पर पडता है । १५

अतः बृहस्पति धीरे धीरे कर बढाने की नीति के पक्षपाती है ताकि कर के अभाव में व भी क्षीण न हों और कर की अधिकता के कारण जनता में उद्वेग भी न हों। बृहस्पति की भाँति भीष्म ने भी कर-नीति को पर्याप्त

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

महत्त्व प्रदान किया है। वे भी प्रजाहित, प्रजा के कल्याण-भावना और उसकी समृद्धि के सिद्धान्त को महत्त्व प्रदान करते हैं। उन्होंने प्रजा की गौ से और राजा की गोपाल से की है ।

कोश वृद्धि के साधन में बृहस्पति तीन प्रकार का धन मानते हैं - (१) शुक्ल (२) तथा (३) कृष्ण । प्रथम वर्ग में श्रुत शौर्य, तप, कन्या, शिष्य एवं याज्य धन की गणना हो द्वितीय में कुसीय, कृषि, वाणिज्य, शुल्क, उपकार के प्रतिरूप प्राप्त तथा आप्त धन की गण थी । तीसरे के अन्तर्गत पाशक, द्यूत, दूतार्थ, प्रतिरूपक, साहस तथा व्याज या धोखे से माना जाता था।१७ ऐसा प्रतीत होता है कि प्रथम प्रकार का धन ब्राह्मण को प्राप्त होता जब कि दूसरे और तीसरे प्रकार का धन क्षत्रिय अथवा राज को प्राप्त होने वाला भाग धन के अन्य तीन प्रकार क्रमागत प्रीतिदाय तथा भार्या के साथ उपलब्धी होने वाला घन था

कर के रूप में प्राप्त धन तथा न्यायसभा में अर्थ दण्ड के रूप में प्राप्त धन की भी गणना होती थी । आधुनिक प्रचलन से यह बहुत अधिक सन्निकट है। उनके अनुसार राजकीय आय विगत वर्ष के शेष तथा वर्तमान सत्र में प्राप्त आय दोनों का प्रतिनिध्य करती है। द्वितीय के अन्तर्गत (अर्थात् वर्तमान वर्ष की आय) (१) निश्चित अथवा उचित (२) अज्ञात साधनों से प्राप्त उदाहरणार्थ, खजाना था, खोई हुई एवं लावारिश सम्पत्ति राज्य को प्राप्त होती थी, और (३) वह धन जिसका अधिकार अन्य लोगों के अधीन होता था। जैसे निधि, उपहार, ऋण। आज कल भी ऋण जो आय का साधन माना जाता है। उचित एवं सामान्य राजकीय आय को साहजिक (सामान्य) एवं अधिक में विभक्त किया गया है। बाद बाली (आय), अर्ध राजकीय आय की पूरक है, उदहरणार्थ व्यापारिक लाभ कुसीद या सूद प्रतिमूल्य में प्राप्त एवं विजयों में उपलब्ध। शेष आय साहजिक या सामान्य है । इसकी परिभाषा उस धन के रूप में की गयी है जिसकी वृद्धि, दिन, मास अथवा वर्ष में होती है। या तो वह भूमि से प्राप्त होत है । (पार्थिव) अथवा अन्य स्रोतों से (पार्थिवेतर) । पूर्व (वर्णित) स्त्रोत भूमि (पुरग्राम) तथा जल प्राकृतिक अथवा कृत्रिम (सदैव कृत्रिमजल के ऊपर राजसत्ता) प्रदर्शित करता है। कर, दण्ड, आकर एवं अन्य कर पार्थिवेतर आय के सूचक है

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

आय के भेद :

राजकीय आय के वेदों के निरूपण पर राज्य के भावी उत्कर्ष तथा उसकी समृद्धि की योजनाएँ निर्भर करती थी। आधुनिक युग के आय-व्यय के व्योरे के अन्तर्गत करों के निरूपण और बार्हस्पत्य राज्य-व्यवस्था में अन्तर की खोजबीन व्यर्थ होगी। साथ ही साथ अवैधानिक भी। वास्तव में बार्हस्पत्य आवश्यकताएँ तथा राज्य की समृद्धि ही आय के निरूपण में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती थी । कोश-वृद्धि के साधनों की अक्षुण्णता बनाये रखते हुए समस्त आय को बलि, भाग, शुल्क, पशु भाग, हिरण्य भाग, द्यूत, समाह्वय कर, तरपण्य, निधि, राजगाभिधन, विजित धन, दण्ड, राजस्वत्व एवं विष्टि आदि के अन्तर्गत विभक्त किया जा सकता है। उपलब्ध बार्हस्पत्य अंशो में बलि०, भाग, शुल्क २, द्यूत३ तथा निधि२४ आदि पारिभाषिकों का प्रयोग मिलता है। तरपण्य, "राजगाभिधन, विजित धन, दण्ड तथा राजस्वत्व आदि की द्योतना के लिये बृहस्पति भी इसी प्रकार की भावना प्रकट करते हैं। वे क्षत्रिय के वैशेषिक धन के अन्तर्गत युद्धोपलब्ध१५, कर २६, दण्ड २७ आदि शब्दों का प्रयोग करते है। संभवतः पशु भाग, हिरण्य भाग तथा विष्टि आदि प्रकारो का जन्म कौटिल्य से पहले नहीं हो पाया था। इनके विपरीत अन्तर राष्ट्रीय स्तर पर चौर वृत्ति को प्रश्रय देने तथा चौर्य कर" को मान्यता प्रदान करने के लिये भारतीय राजनीतिक तथा अर्थशास्त्रों बृहस्पि के ऋणी है ।

बलि :

बलि शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में देवताओं को यज्ञों में दी जानेवाली भेंट के अतिरिक्त से अपने जन की रक्षा, शत्रु के गढ़ों को तोडने आदि कार्यों के उपलक्ष्य में राजा को किया जाने

वाले धन के लिये भी किया गया है।" उत्तर वैदिक काल से लेकर बौद्ध युग तक आते आते बलि शब्द राजनीतिक शब्दावली का पारिभाषिक बन गया और बृहस्पति तथा अन्य अर्थ तथा धर्मशास्त्रियों ने समान रूप से इस शब्द का प्रयोग राजा को अपने कर्तव्य का पालन के पुरस्कार स्वरूप मिलने वाले धन के लिये

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

किया है। अपने कर्तव्यों के उचित पालन के परिणाम स्वरूप मिलने वाले धन के लिये किया है।" अपने कर्तव्यों के उचित पालन के परिणाम स्वरूप षड्भाग का अधिकारी राजा माना गया है। प्राचीन भारतीय राज्य-चितिकों का एक वर्ग था जो तपोवनवासियों से भी उनकी अन्य उपज के षभाग को वसूल करने का राजा को अधिकार प्रदान करता था, जब कि दूसरा वर्ग राज के अधिकार को मान्यता प्रदान करता हुआ कहता था कि वे अपने पुण्य का छ अंश राजा को प्रदान करते है। भाग :

जहाँ बलि की आयोजना के अन्तर्गत समस्त राष्ट्र आ जाता था वही "भाग" राजकीय आय अथवा मालगुजारी के रूप में कृषीबल अर्थात् किसानों से वसूल किया जाता था। इस भाग की वसूली तक ही राज्य की भूमि पर राजा का अधिकार माना जाता था। बृहस्पति भाग की वसूली में देश स्थिति तथा किसानों के परम्परागत नियमों और मान्यता को विशेष महत्त्व प्रदान करते है। बृहस्पति कृषि, भूमि तथा ऋतु के अनुरूप उपज का राजकीय भाग वसूल करने के पक्षपाती है। उनका कथन है कि कृषीबल अर्थात् कृषि पर जीविका निर्वाह करने वाले किसानखिल, वर्षा और वसन्त की उपज का क्रमशः, दसवाँ, आठवाँ तथा छठ्ठा अंश राजा का भाग दे । इसके विषय में भी उनका मत है कि देश स्थिति के अनुरूप छठ्ठे महिने या वार्षिक भाग दे । बृहस्पत्य उल्लेखों में खिल भूमि, वर्षा तथा वसन्त की फसलों का वर्णन मिलता है। बृहस्पति कृषकों के लिये अनेक अनुच्छेद रखते है । "वायसंग्रह" अथवा फसल काटने के अवसर पर कृषकों को अनासेध्य घोषित करते है। * शत्रुसेना से पीडित तथा दुर्भित और व्याधिपीडित देश में वे पुनः आहवाहन की व्यवस्था करते है ।

शुल्क :

राजकीय आय का अन्य महत्त्वपूर्ण साधन शुल्क होता था। शुक्रनीति के लेखक के शब्दों में विक्रेता तथा क्रेता से वसूल किया जाने वाला राजकीय भाग शुल्क कहलाता था । बार्हस्पत्य वर्णनों में शुल्क विभाग के

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

प्रशासन-सम्बन्धी विवरण उपलब्ध नहीं होते। कौटिल्य व्यवस्था के अन्तर्गत शुल्काध्यक्ष नामक पदाधिकारी के अन्तर्गत यह विभाग शुल्कशाली कहलाता था। व्यापारिय से सम्बन्धित आवश्यक सूचनाओं का संकलन और आलेखन इसी विभाग का कार्य था। ३७ बृहस्प का उदेश्य व्यापार की राजकीय मान्यता की छानबीन करना था । व्यापार का अवरोध नहीं।

बृहस्पति :

वाणिज्य के अतिरिक्त कुसीद तथा शिल्पियों से प्राप्त होने वाले धन की भी गणना क है।*८ शिल्पियों के अन्तर्गत वे हिरण्य-स्वर्णकार, कुप्य अर्थात् खानों में काम करने वालों सूत्रकारो कार, पाषण आदि के संस्कर्ताओं के अतिरिक्त, नर्तकों, तालकों और गायन करने वालों की गणना करते हैं।" इन लोगों से प्राप्त होने वाले अंश की मात्रा के विषय में पर्याप्त प्रमाणों के अभाव में कुछ भी कहना संभव नहीं है।

मृतक सम्पत्ति कर :

बृहस्पति आय के साधनों में मृत व्यापारियों के धन से मिलने वाले लाभ का भी उल्लेख करते हैं। उनके मतानुसार मृत व्यक्ति के भाण्ड या सामग्री का निरीक्षण राजपुरुष का कार्य है। यदि उस व्यक्ति का कोई रिक्थहर होता है और अन्य लोगों से वह अपनी स्थिति प्रमाणित करवा लेता है। तो अपने वर्ण के अनुकूल राजकीय अंश देकर उसे प्राप्त कर सकता था।" राजा का अंश, बृहस्पति, शुद्र के धन में छा भाग विद-वैश्य के धन का नवां भाग और क्षत्र जातियों के धन का दसवां तथा ब्राह्मण के धन का बीसवा भाग मानते है

अक्ष तथा समाह्वदय कर :

बृहस्पति ने द्यूत खेलने के समर्थन तथा विरोध में अनेक मत प्रकट किये है। एक स्थल पर समर्थ, दूसरे पर विरोध और तीसरे स्थल पर चरित्र के अध्ययन के लिये इसकी उपयोगिता का स्वीकार किया है। विशेष रूप

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

से राजकीय आय के रूप में इसका महत्त्व स्वीकार किया गया है । बृहस्पति समाद्ववय या सड़क के किनारे होने वाले जानवरों के युद्ध तथा नट क्रीडा आदि को भी राजकीय मान्यता द्वारा धन लाभ का साधन मानते अन्तराज्य तस्कर पर कर : ४२

जहाँ बृहस्पति राज्य में सुख शान्ति तथा कण्टकोद्वरण द्वारा चौरवृत्ति के निरोध की योजना करते है, वहीं वे अन्तर राज्य पर राज्य प्रोत्साहित तथा संरक्षित चौर-वृत्ति का समर्थन करते है । इस प्रकार की चौर वृत्ति का षष्ठांश वे राजगामि धन मानते हैं। ट्यूडर इग्लैड में भी साम्राज्ञी एलिजाबेथ ने इस प्रकार के समुद्री तस्करों को न केवल राजकीय मान्यता प्रदान की थी वरन् उन्हें प्रोत्साहन भी दिया था । उसी की प्रेरणा के फलस्वरूप सर फ्रांसिस ड्रेक और जोन होजिस स्पेन के अजेय आर्यडा को ध्वस्त करके इग्लैड की समुद्री शक्ति के महत्त्व को बढ़ा सके थे। बृहस्पति तथा एलिजाबेथ दोनों का ही उदेश्य इस प्रकार के तत्त्वों को स्वदेशी राजनीति से दूर रख कर अपने शत्रुओं की शक्ति के दमन में उनका सहयोग प्राप्त करना था । संस्कृत विश्व के इतिहास में ये दे अद्वितीय उदाहरण हैं। इस प्रकार का धन भी बार्हस्पत्य के अन्तर्गत अतिरिक्त आय में गिना जान रहा होगा ।

दण्ड :

राजकीय आय का एक अन्य महत्त्वपूर्ण अङ्ग अर्थ दण्ड के रूप में न्यायालयों में मि वाला धन होता था। बृहस्पति वित्तीय विवादों में राजा की उपस्थिति अनिवार्य मानते है। वे नैतिकता तथा शास्त्र पर आधारित दण्डों को स्वीकार करते है। युद्ध राज्य की अतिरिक्त आय के साधनों में बृहस्पतियुद्धो में उपलब्ध होने वाले धन की भी गणना करते है। मुस्लिम राजनीति के अनुसार भी खम्श (लूट का माल) राजकीय आय वृद्धि का साधन होता था। राज्य सम्पूर्ण लूट का १/५ भाग वैधानिक आधार पर ले सकता था किन्तु इस नियम का सदैव पालन नहीं होता था। आय के अन्य साधन संभवतः परवर्ती अर्थशास्त्रियों द्वारा मान्य आय के साधनों

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

की ही भाँति उन्हें भी कुसीद, निधि, अस्वाभिविक्रय, गणिका आदि से प्राप्त होने वाला धन स्वीकार्य भी रहा होगा।

इस प्रकार बृहस्पति ने जिस अर्थ व्यवस्था एवं परम्परा को जन्म दिया उस पर अग्रेसर होकर कौटिल्य आदि अर्थशास्त्रियों ने विषय का अध्ययन एवं प्रतिपादन ही नहीं किया वरन वैज्ञानिक चिन्तन की भावना का संवर्धन भी किया था ।

पादटीप

कामन्दकीय ८/४, अर्थ. ६/१, मनु. १/२९४, शान्ति ६९६४, शुक्र १/६१ १. २. का. २/४, अर्थ १/२, बृ.स्पू. व्या. का. १/८

२ का.२/४ अर्थ १/२बृ.स्मृ,व्या का.७/१

३.धनमूलाः क्रियाः सर्वाः बृ.स्मृ.७/१

४. कोशपूर्वास्सर्वारंभाः । अर्थ २/८ कोशो हि भूपतीनां जीवितं न प्राणाः । का. १९/१६

या उस पर अग्रेसर नहीं किया वरन धन मूलाः क्रियाः सर्वाः । व. स्पू. व्या. का. ७/१

यस्य संजायते मंत्री वित्तग्रहण-लालसः । तस्य कार्य न सिध्येत भूमिपस्य कुतो धनम् ? नीति पृ. १३८

६.किं तस्य व्यवहारार्थौविज्ञातैः शुभकरैरपि । यो न चिन्तयते राज्ञो धनोपायं रिपुक्षयम् ॥ तदैव. ११०

७. २/७ अर्थशास्त्र

८. २/७ तदैव

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

९. २/७ तदैव

१०. वृ.सू. २/१-२

११. गुणवनिति यः प्रोक्तः ख्यापितो जनसंसदि । कथं तेनैव वक्रेण निर्गुणः परिकथ्यते ॥ बृ.स्मृ. व्य. का. १/३/६

१२. मनु. ७ / १२९, शान्ति ८८/५, शुक्र. २/१७१-७२, ७४-२२२ देशस्थित्या बलिं दद्युर्भूतं षण्मासवार्षिकम् । बृ. स्मृ. व्य. का. १/४४

१३.यो राजा धनलोभेन हीनाधिककरप्रियः ।

१४. तस्य राष्ट्रं व्रजेन्नाशं न स्थात्परमवृद्धिमत् ॥ नीति १०३ शान्ति ८९ / २३, मनु. ७/१/१-१२

१५. शुल्कस्थानेषु योऽन्यायः स्वलोऽपि च प्रवर्तते मनु. १ / ४६

१६. बृ. स्मृ. व्य. का. १/१२७, नीति पृ. २०३

१७. तदैव ७/२-५

१८. क्रमागतं प्रीतिदायं प्राप्तं च सह भार्यया । अविशेषेण सर्वेषां वर्णानां त्रिविधं स्मृतम् ॥ बृ. स्मृ. व्या. क. ७/९

१९ विरमपि । करदण्डान व्यवहारतः ॥ नहीं. १/४३, मनु ८/३०८ शान्ति ७२/१०

२०.वहीर/४४. अर्थ ११३. पू. २२, ५/२२२. शान्ति ६९२४

ऽ२२. यही व्यका - मनु. ८/३६० अर्थ ३/१६, पृ. १९०, शुक्र. ४/२/०

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

२३. वही व्यक

२४. वही. व्य. का. २/२७

२५. वही व्य. का. ७/११, शुक्र ४/१२२

२६. वही. व्य. का. ७/११, संभवतः पशु स्वर्ण आदि के करों की गणना होती रही होगी। शालि. ६७/२३, मनु. ७/१३०, शुक्र. ४/२३१

२७. वही व्य. का. ७/११, शान्ति ६९ / १६६, मनु. ८/३०७, अर्थ. ४/९, शुक्र. ४/११४

२८. वही व्य. का. १३/३८

२९. ऋग्वेद ३/४, ३५, ३/३४-१, १०/१७३/६

३०. बृ. स्मृ. व्य. का. १/४१, मनु. ८/३०८ बलिषड्भागहारिणं, शान्ति ७२/१०

३१. बृ. स्मृ. व्य.का. १/४४

३२. दशाष्टषष्टं नृपतेर्भागं दद्यात्कृषीबलम् । खिलाद्वर्षावसन्ताच्च कृष्यमाणाद्यथाक्रमम् ॥ बृ. स्मृ. व्या.का. १/४३

३३. देशस्थित्वा बलिदद्युर्भूतं षण्मासवार्षिकम् । बृ. स्पू. व्य. का. १/४४

३४. बृ. स्पृ. व्य. का. १/१३७

३५. वही, १ / १४८

३६. विक्रेतृक्रेतृभ्यो राजभागः शुल्कमुदाहृतम् । शुक्र. ४/२/७

Vidhyayana - ISSN 2454-8596
An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal
www.vidhyayanaejournal.org
Indexed in: ROAD & Google Scholar

३७. शुल्काध्यक्षः शुल्कशालाध्वजं च प्राङ्मुखं उङ्मुखं वा महाद्वाराभ्याशे निवेशयेत् अर्थ. ११०

३८कुसीदकृषि-वाणिज्य-शुल्कशिल्पानुवृत्तिभिः... । शबलं समुदाहृतम् - बृ.स्मृ.व्य.का. ७/

३९. वही १३/३३-३७

४०.यदा तत्र वमिकश्चित् प्रमीयते प्रमादतः । तस्य भांडं दर्शनीयं नियुक्तैः राजपुरुषैः ॥

या गिछे तदा हि नः |स्वाम्यं विभाववेदन्यैः स तदा लब्धुमर्हति ॥

४१. वही. १३/१६१३-१७

४२.वही २८/१-२

४३. स्वाम्याज्ञा तु यच्चौरैः परदेशात्समाहृतम् । राजे दत्वा तु पद्मार्ग भजेयुस्ते यथांशतः ॥ वही. व्य. का. १३/३८